प्रवचन नं. ४८ गाथा-१२ ता. ३१-७-७८ सोमवार अषाढ वदी-१२ सं.२५०४

समयसार बारहवीं गाथा है। `प्रयोजनवान है' यहाँ तक आ चुका है कल। इसप्रकार अपने अपने समय में अर्थात कि स्वरूप की दृष्टि है वह निश्चय का विषय है, दृष्टि का विषय जो है यह निश्चय है और पर्याय के भेद होते हैं वह व्यवहार है। निश्चय का विषय त्रिकाली द्रव्य है और व्यवहार का विषय वर्तमान पर्याय है। `**इस तरह अपने-अपने अवसर में दोनों नय कार्यकारी है**'। इसप्रकार एक नय निश्चय है यह त्रिकाली को विषय बनानेवाला यह आदरणीय है, और वर्तमान में पर्याय का भेद है, यह व्यवहारनय जानने लायक है। इस प्रकार अपने अपने समय में दोनों नय कार्यकारी है। इसप्रकार कार्यकारी है।

`**कारण कि तीर्थ और तीर्थ के फल की ऐसी ही व्यवस्थिति है।**' **अर्थात जिससे तिरा जाये वह तीर्थ है।** सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का जो मार्ग है, उससे तिरते हैं,

है पर्याय, है व्यवहार, सद्भूत व्यवहार... टीकाकार जयचन्द्रजी पण्डित(जी) ने असद्भूत व्यवहार का निमित्त अपेक्षा कथन किया है। असद्भूत व्यवहार का कथन किया है। व्यवहार तो वस्तुतः व्यवहार, पर्याय में जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय है यह व्यवहार है यह तीर्थ है और इसका फल भी केवलज्ञान, यह भी व्यवहारधर्म का फल है। ***जो मोक्षमार्ग है पर्याय है अतः उसे व्यवहार कहा जाता है और उसके परिणाम स्वरूप केवलज्ञान वह भी व्यवहार है। श्रुतज्ञानी को यह केवलज्ञान भी सद्भूत व्यवहारनय का विषय है।*** अर्थात व्यवहार धर्म जो निर्मल, शुद्ध चैतन्य द्रव्य... गहन और गंभीर चीज, उसकी दृष्टि होने पर, उस दृष्टि में गहन विषय का भान होना वह निश्चय है। और वर्तमान पर्याय का प्रगट होना, यह पर्याय व्यवहार है।

`जिससे तिरें' अर्थात कि मोक्ष का मार्ग पर्याय है, परंतु इससे तिरते हैं, तिरने का यह उपाय है और यह व्यवहार धर्म है। है न ? पर्याय, धरम है और यह पर्याय है और मोक्षमार्ग है... जो कि यहाँ तो असद्भूत व्यवहारनय लेंगे। परंतु यह कहीं तिरने का उपाय नहीं। साथ में होता है, उसका ज्ञान कराया है। आहाहा !

वास्तव में तो भगवान आत्मा ! अनंतगुण गंभीर... संख्या अपेक्षा जिसके गुणों का अंत नहीं, और एक गुण है उसकी सामर्थ का अंत नहीं। - ऐसा जो द्रव्य स्वरूप, जिसमें अनंतगुण हैं उन गुणों की भी सीमा नहीं, और एकगुण की शक्ति की जहाँ (अपरिमित) हद नहीं। - ऐसा जो द्रव्य स्वभाव, उसकी गहनता के गंभीरता के विचाररूप पर्याय में उसकी गंभीरता में विचार करे, तब वह पर्याय द्रव्य तरफ ढल जाती है, वह द्रव्य है वह निश्चय है और जो प्रगट हुई पर्याय, यह व्यवहार है, यह तीर्थ है। चौथे पाँचवें छठवें गुणस्थान की निर्मलदशा, यह व्यवहार, तीर्थ है और उसका फल भी व्यवहार, केवलज्ञान (है), यह भी पर्याय है। आहाहा !

`जिससे तिरा जाय वह तीर्थ है' मोक्षमार्ग की पर्याय... वस्तु महा गंभीर सागर (जैसा) इसकी अंतर में प्रतीति होना होना और उसका ज्ञान होना और इसमें रमणताका अंश होना, यह तिरने का उपाय तीर्थ है। द्रव्य तो निश्चय है। इसमें यह पर्याय एवं उपाय और उपाय का फल यह इसमें नहीं। समझ में आया ? और पार होना वह व्यवहार धर्म का फल है। जो यह मोक्षमार्ग पर्याय है, यह भेद है, इसलिये यह व्यवहार है और उसका फल मोक्ष यह भी पर्याय है उसका फल व्यवहार है। आहाहा ! अरे ऐसी बातें है।

पण्डित जयचन्द्रजी (जी) ने इसमें से असद्भूत व्यवहार का... इस समय जो निमित्त होता है वह उसका ज्ञान कराया है। अब, इसमें से यह सभी विरोध उठा है। कि देखो ! यह पाठ है, छट्ठेमें - ऐसा करना और व्रतपालना नियम करना।

बापू ! - ऐसा नहीं हो ! यह होता है इसका ज्ञान कराया है। इसलिए व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा है।

और वह व्यवहार तथा अनेक भिन्न-भिन्न धर्म बताये है। कहा है न भाई। बहुत सूक्ष्म बात है बापू !

भगवानआत्मा पूरणानंद का कंद, महा महा आश्चर्यकारी, गंभीर गहन स्वभाव का सागर प्रभु ! उसे ध्येय बनाकर... जो ध्येय हुआ अंदर यह निश्चय और ध्येय बनाकर जो पर्याय हुई, यह नहीं थी और हुई इसलिये यह पर्याय यह व्यवहार है। है, है और है यह त्रिकाल, वह निश्चय का विषय है, परंतु नहीं था और प्रगटा, तैरने का उपाय यह तो व्यवहार हुआ और ऐसे व्यवहार के साथ असद्भूत व्यवहार व्रतादि के विकल्प कैसे हों उसका यहाँ ज्ञान कराया है, भावार्थ में। समझ में आया कुछ ?

`और इस व्यवहार धर्म का फल है, पार होना पूर्ण होना', यह सर्वज्ञपना होना यह भी व्यवहार धर्म का फल है। यह भी पर्याय है यह साधक की अपेक्षा से केवलज्ञान भी व्यवहारनय का विषय है। ***केवलज्ञानी को अब नय नहीं, परंतु यहाँ साधक जीव जब द्रव्य और पर्याय के भेदों का विचार करते है तब केवलज्ञान भी व्यवहारनय का विषय है।*** कारण कि प्रगट हुई पर्याय है, यह कहीं अप्रगट वस्तु जो त्रिकाली गहन स्वभाव का भण्डार, एकरूप रहनेवाली, वह यह वस्तु नहीं। आहाहा ! इसलिए कहते हैं कि व्यवहार से तिरा जाय वह तीर्थ वह व्यवहारधर्म, मोक्ष का मार्ग उसका फल केवलज्ञान यह व्यवहार धर्म का फल, अथवा `अपने स्वरूप को पाना वह तीर्थ फल यह। व्यवहार धर्म का फल यह। जैसा स्वरूप है वैसा पर्याय में सर्वज्ञपना प्राप्त होना यह तीर्थ फल है।

दूसरी जगह भी कहा है। `**जइ जिणमयं पवज्जइ ता मा ववहारणिच्छए मुयह**'। आहाहा ! यह व्यवहार-निश्चय उसे छोड़ना नहीं। `**एक्केण विणा छिज्जइ तित्थं अण्णेण उण तच्चं।।**' **आचार्य कहते हैं कि हे भव्य जीवो, जो तुम जिनमत को प्रवर्ताना चाहते हो...** वीतराग मार्ग का प्रवर्तन जिस प्रकार है, इस प्रकार प्रवर्तना चाहते हो, तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों को न छोड़ो। पर्याय है ही नहीं - ऐसा न छोड़ो। द्रव्य है ही नहीं - ऐसा न छोड़ो। `पर्याय नहीं' - ऐसा कहा था ग्यारहवीं (गाथा) में, असत्यार्थ कही थी, यहाँ अब कहते हैं कि, `पर्याय नहीं' - ऐसा न कहो। पर्याय है असत्यार्थ कही थी यह तो गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा था। त्रिकाली वस्तु की, दृष्टि, वस्तु की कराना... वह मुख्य है वह निश्चय है और पर्याय है वह गौण करके `नहीं' - ऐसा कहा था। परंतु यह पर्याय नहीं - ऐसा न मानो। आहाहाहा !

दोनों नयों को न छोड़ो कारण कि व्यवहारनय बिना तो तीर्थ का व्यवहारधर्म

का नाश हो जायेगा। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो मोक्षमार्ग की पर्याय है जो भेदरूप दशा है। त्रिकाली अभेद की अपेक्षा से यह मोक्ष का मार्ग है यह भी भेदरूप व्यवहार धर्म है। आहाहा ! समझ में आया ?

श्रोता :- किसी जगह व्यवहार कहें किसी जगह निश्चय कहें इसमें हमको निर्णय किस प्रकार करना ?

उत्तर :- यह किस अपेक्षा से ? राग की मंददशा है तब उसकी अपेक्षा इस राग को जब व्यवहार कहा तब निर्मल पर्याय को निश्चय कहना। परंतु यहाँ जब त्रिकाल को निश्चय कहना तब भेद को व्यवहार कहना- ऐसा है। वस्तु की स्थिति तो ऐसी है। आहाहा ! निर्मल पर्याय... यह तो यहाँ रखा बारहवीं गाथा में भिन्न-भिन्न पर्याय निर्मल और राग यह अनेकप्रकार हुये एक जात नहीं हुई, यह दोनों को जाना हुआ प्रयोजनवान है - ऐसा कहा है। इन दोनों को जानना यह व्यवहार नय का प्रयोजन है। आहाहा !

जो मोक्ष का मार्ग है यह पर्याय है और उसके साथ असद्भूत विकल्प, व्रतादिक के होते हैं यह भी विकारी पर्याय है अर्थात दो जो हुआ अनेक हुए। इस अनेक को इस तरह जानना, वह व्यवहार है और त्रिकाली को जानना, वह निश्चय है अरे ऐसी बातें है। प्रगटे और नाश हो यह वास्तव में व्यवहार है, उत्पादव्यय है और ध्रुव जो त्रिकाली है वह निश्चय है जिसमें उपजना नहीं, बदलना नहीं, व्यय होना नहीं, एकरूप जो अनंतगुण की राशि प्रभु ! आहाहाहाहा !

एक परमाणु का एक सत्ता गुण लो तो भी एक समान है और एक आकाश का सत्ता गुण लो अनंतगुणा चौड़ा तो भी वह समान। आहाहा !

(श्रोता :- शक्ति और भाव अपेक्षा से समान है) यह, इस प्रकार ही समान है। क्षेत्र से बड़ा अतः बड़ा है - ऐसा नहीं (श्रोता :- भाव अपेक्षा बड़ा न ?) एक (समान) ही है, क्षेत्र से बड़ा अतः बड़ा है यह बात ही नहीं यहाँ।

इसीप्रकार भगवानआत्मा... अंगुल के असंख्य भाग में अनंत आत्मायें है एक-एक आत्मा की सत्ता... आहाहा ! `अस्तित्वरूप जो है' वह पूर्ण है, और यह आत्मा की सत्ता... केवली समुद्घात करें तब भी सत्ता, सत्ता है वह तो सत्ता ही है, यह सत्ता बढ़ गई और यहाँ सत्ता छोटी हुई - ऐसा नहीं। गहन बात है भाई !

वीतराग मार्ग तो समझना बहुत कठिन है। आहाहाहाहा !

यहाँ कहते हैं कि व्यवहार बिना तो तीर्थ... व्यवहार धर्म। पर्याय जो है यही व्यवहार है। पंचाध्यायी में तो स्पष्ट... पर्याय वह व्यवहार और द्रव्य वह निश्चय- ऐसा स्पष्ट लिया है, और यहाँ भी ग्यारहवीं गाथा में, सभी व्यवहार अभूतार्थ है - ऐसा

कह कर... सभी अभूतार्थ है - ऐसा कहकर, उसकी पर्याय का भाव भी अभूतार्थ है - ऐसा कहकर निषेध किया है। आहाहा !

एक त्रिकालभगवान, अनंत... अनंत... गुण इस अनंत की कोई सीमा नहीं। आहाहाहा ! जैसे क्षेत्र की कोई मर्यादा नहीं, कि क्षेत्र कहाँ हो रहा पूरा, लोक के बाहर अलोक कहाँ पूरा हुआ ? क्या है यह ? वह बात ! इस क्षेत्र की जहाँ हद नहीं, अंत नहीं। इसीप्रकार काल का कभी अंत नहीं, कब से काल प्रारंभ हुआ ? आहाहाहा ! अनादि ! इसीप्रकार भावों की संख्या की सीमा नहीं, एक आत्मा के गुणों के संख्या की सीमा नहीं, आहा...हा ! क्षेत्र का भी जहाँ माप हद कहीं नहीं, काल की सीमा नहीं, भूत और भविष्य की। आहाहा ! कि यहाँ से प्रारंभ हुआ और यहाँ पूरा हुआ - ऐसा है कहीं ? ऐसी इसकी गहनता...

इसीप्रकार यह भगवानआत्मा में अनंत जो गुण है, इन गुणों की संख्या की भी गंभीरता का पार न मिले, सीमा न मिले, चाहे क्षेत्र इतना शरीरप्रमाण। आहाहा ! ऐसे अनंतगुण... अनंत का अंत नहीं इतने अनंत, इसप्रकार और अनंतगुणों की अनंतता की हद नहीं इतना... और एकगुण की भी शक्ति की सीमा नहीं इसकी एक शक्ति ऐसी। आहाहाहा ! क्योंकि एक-एकगुण में अनंतगुण का रूप, वह गुण कितने ? कि हद नहीं, अंत नहीं। आहाहाहा ! इतने गुणों का एकगुण में रूप। क्योंकि एक-एकगुण में अनंतगुण का रूप, वह गुण कितने ? कि सीमा नहीं, अंत नहीं। आहाहाहा ! इतने गुणों का एकगुण में रूप। आहाहाहा ! तब एकगुण की भी सीमा नहीं। आहा ! बापू ! मार्ग कोई अलग है भाई ! आहाहा !

ऐसा जो एकगुण, उसकी भी जहाँ सीमा नहीं कि यहाँ गुण पूरा हो गया - ऐसा नहीं कहीं ! आहाहाहा ! ऐसे अनंतगुण की एकरूप वस्तु वह निश्चय है, जो कायम है वह निश्चय है, और जो उपजे और विनसे वह व्यवहार है। आहाहा ! संसारी पर्याय होती है, यह जाती है, मोक्ष की पर्याय होती है। फिर से... मोक्ष की पर्याय होती है न ? यह कहीं त्रिकाल नहीं है। आहाहाहा ! यह तो गहन बातें है प्रभु। क्या कहें ? आहाहाहाहा !

इस गंभीरता की छोर पाने जायें, वहाँ दृष्टि निर्विकल्प होती है। दृष्टि में मर्यादित राग रहे, वहाँ तक उसकी बेहद शक्ति का स्वभाव इसकी प्रतीति में न आये, इसके ज्ञान में न आये। कारण कि (जो) राग है सीमित मर्यादित एवं सीमा में है। आहाहाहा ! और अराग जो सम्यग्दर्शनज्ञान की पर्याय, वह सम्यग्ज्ञान की पर्याय भी बेहद है। आहाहा ! क्योंकि यह स्वयं बेहद गुण द्रव्य को स्वयं जाने और मानता है। आहाहाहाहा ! यह तो सूक्ष्मबात है भाई...!

यह सम्यग्ज्ञान की एक समय की पर्याय, असीमित ऐसे गुणों और असीमित - ऐसा एक गुण का सामर्थ ऐसे अनंतगुणों का एकरूप जिसकी पर्याय में जानने में आए वह पर्याय कितनी महान ? आहाहाहा ! इस पर्याय के अविभाग प्रतिछेद करने जायें तो अंत नहीं इतने है। आहाहाहा ! मार्ग बहुत सूक्ष्मभाई ! सत्य है यह कोई अलौकिक बात है। आहा !

यह चीज जो त्रिकाली वस्तु है, जिसमें हलचल नहीं, जिसमें पलटना नहीं, जिसमें नाश होना नहीं, जिसमें उत्पाद नहीं। - ऐसा जो भगवानआत्मा पूर्णानंद का नाथ, यह सम्यग्दर्शन का विषय, यह निश्चय। आहाहा ! और जो पर्याय प्रगटी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान महागंभीर, पदार्थ को जानकर और प्रतीति करके, फिर भी प्रगटी पर्याय वह व्यवहार है। आहाहाहाहा ! और इसके साथ व्रतादिक का विकल्प रहे, यह असद्भूत व्यवहार है। आहाहा !

यह असद्भूत व्यवहार यह धरम नहीं कहीं... इसीप्रकार उसका फल केवलज्ञान... यह इसका फल नहीं। आहाहाहा ! परंतु यह निर्मल पर्याय के साथ व्यवहार का विकल्प किस मर्यादा का होता है - ऐसा बताकर उसे व्यवहार धर्म कहा, उपचार से। समझ में आया ?

वास्तविक तो व्यवहार धर्म यह है। भगवानआत्मा बेहद अपरिमित स्वभाव का सागर (है) आहाहा ! इसका केवलज्ञान में माप आये। परंतु है वस्तु अनंतशक्तियाँ और शक्तियों (में) का सामर्थ, आहाहा ! इसको जिसने प्रतीति में अनुभव में सम्यग्दर्शन में (लिया), आहाहा ! इस पर्याय को भी यहाँ तो व्यवहार कहा जाता है और यह व्यवहार धर्म तिरने का उपाय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो राग की अपेक्षा निश्चय, द्रव्य की अपेक्षा व्यवहार बहुत सूक्ष्म बापू मार्ग ! क्या कहें ? आहाहा !

जिनेश्वरदेव एवं उसके कहे हुये तत्त्व यह अन्यत्र कहीं है नहीं। किसी ने जाना नहीं और इसकी गंभीरता को कोई पकड़ सकता नहीं। सभी ने कल्पित बातें कीं है। आहाहा ! यह तो जिनेश्वर देव का कहा हुआ मार्ग, जो मार्ग द्रव्य के आश्रय से प्रगट होता है, आहाहाहा ! उसे भी यहाँ व्यवहार, तिरने का उपाय कहकर उसे व्यवहार धर्म कहा।

तीर्थ (अर्थात) व्यवहारधर्म का नाश हो जायेगा। देखा ? पर्याय नहीं मानो (तो) असत्यार्थ कही थी ग्यारहवीं (गाथा) में, पर्याय नहीं - ऐसा मानो तो सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र और चौथा, पाँचवां, छठवाँ, सातवाँ, आठवें की पर्याय, उसका नाश हो जायेगा। आहाहा ! हाँ ? क्योंकि चौदहगुणस्थान ही द्रव्य में नहीं और चौदह गुणस्थान को असत्यार्थ और अभूतार्थ कहा है। (श्रोता :- इसे तो अजीव अधिकार में पुद्गल कहा

है) उसे अपेक्षा से (कहा) क्या अपेक्षा है बापू ! आहा ! यह असत्यार्थ कहा है परंतु यदी पर्याय और गुणस्थान है ही नहीं तब तो तीर्थ ही नहीं। चौथा, पाँचवा, छठवाँ, सातवां गुणस्थान की दशा ही नहीं। आहाहा ! छोटाभाई ! - ऐसा गंभीर है। आहाहाहा !

यह तो यहाँ कहेंगे, भावार्थ में आयेगा। भावार्थ में व्यवहार(को) कहेंगे। यह व्यवहार धर्म है - ऐसा कहेंगे। वास्तविक व्यवहारधर्म... तो यह पर्याय है यही व्यवहारधर्म है, त्रिकाली की अपेक्षा से। परमार्थ वचनिका में कहा है, परमार्थ वचनिका में है कि जो निश्चय मोक्षमार्ग है यही व्यवहार है। पर्याय है न यह ? आहाहा !

अर्थात कि जो पर्याय नहीं - ऐसा कहा था, यह गौण करके, मुख्य निश्चय का लक्ष्य कराने, उसे असत्यार्थ कहा था गौण करके। परंतु वह है ही नहीं - ऐसा मानें तब तो चौथा, पाँचवां, छठवां, सातवां, आठवां गुणस्थान की दशा ही नहीं। आहाहाहा ! यह तो वीतरागमार्ग बापू बहुत (सूक्ष्म)... स्याद्वाद किस अपेक्षा से कहा है इस अपेक्षा इसे जानना चाहिए। असत्यार्थ कहा था, किस अपेक्षा से, पर्याय को व्यवहार कहते हैं, किस अपेक्षा से ? फिर साथ में राग होता उसे व्यवहार कहते हैं किस अपेक्षा से ? आहाहा ! अकेला व्यवहार असत्, दया, दान, व्रत, भक्ति यह तो बंध का कारण है, यह कहीं मोक्ष का कारण नहीं। आहाहा ! व्रत, नियम, प्रतिक्रमण बाहर के विकल्प जो सभी उठते हैं, वह तो सभी बंध के कारण है। यह कहीं मोक्ष का कारण भी नहीं, उसका फल मोक्ष ही नहीं, इसका फल तो बंध है। आहाहाहा !

`तीर्थ... व्यवहारधर्म को नहीं मानों तो व्यवहार का नाश हो जायेगा' पर्याय का नाश हो जायेगा। पर्याय नहीं - ऐसा हो जायेगा- ऐसा नहीं और `निश्चय बिना...' वास्तविक पूरणतत्त्व है' उसकी दृष्टि बिना भी तत्त्व का नाश हो जायेगा। तत्त्व तो मूल यह है त्रिकाली, यह पर्याय तो प्रगट हुई दशा है। परंतु जिसे प्रगटना नहीं, जिसे एकरूप त्रिकाल रहना है - ऐसा जो निश्चय न मानों तब तो तत्त्व का नाश हो जायेगा। आहाहाहा ! - ऐसा है। परंतु मार्ग में बहुत बदलाव हो गया, बहुत न ! आहाहा ! तीनलोक के नाथ केवली परमात्मा तो बिराजते हैं न ! महाविदेह में वहाँ से तो यह बात आयी है। आहाहाहा ! कुन्दकुन्दाचार्य वहाँ गये थे आठ दिन रहे थे और यहाँ आकरके यह शास्त्र बनाया है। आहाहा ! निश्चयनय बिना अर्थात द्रव्य के स्वभाव की त्रिकालता बिना, तत्त्व का नाश हो जायेगा, वस्तु का नाश हो जायेगा। निश्चय तत्त्व न मानें तो वस्तु ही नहीं रहेगी कहीं। आहाहा !

निश्चय पूर्ण सत्य को न मानों, तो तब द्रव्य का नाश हो जाता है, और वर्तमान प्रगटी पर्याय नहीं - ऐसा माने तो मोक्ष का मार्ग जो तीर्थ है उसका नाश हो जाता है। समझ में आया ?

अब भावार्थ :- `लोक में सोने के सोलहवान (ताव) प्रसिद्ध है' `सोलहवान कहते हैं न ?' तुम्हारे (यहाँ) क्या कहते हिन्दी में ? सोलहवान। पूर्ण सोलहवान सोना। `पन्द्रहवें वान तक उसमें चूरी आदि, तांबा आदि, जस्ता आदि पर-संयोगों की मलिनता रहती है' चौदहवान पंदरवान तक को सोने में तांबे का जस्ता का अंश मिला हुआ रहता है, सोलहवान में यह अंश रहता नहीं। सोलहवान शुद्ध सोना हो जाता है। इसलिये अशुद्ध कहलाता है। सोने में तेरहवान और चौदहवान यह अशुद्धता कहलाती। पूर्ण सोलहवान नहीं इसलिए, और ताप देते देते अंतिम ताप से उतरे... अग्नि की आँच देने पर सोने को, अंतिम ताप देने से सोलहवान पूरा होता है, `तब सोलहवान शुद्ध स्वर्ण कहलाता है'।

यह तो तुम्हारे घर की, सोने की बात है। आहाहा ! अब यह तो दृष्टांत हुआ।

जिन जीवों को सोलहवान सोने का ज्ञान, श्रद्धान और प्राप्ति हुई उन्हें पन्द्रहवान तक का कुछ प्रयोजनवान नहीं। अर्थात कि इसे पन्द्रहवान है ही नहीं, है ही नहीं फिर उसे प्रयोजनवान कहाँ रहा ? सोलहवान हुआ उसे चौदहवान, पन्द्रहवान है ही नहीं। इसलिये उसका प्रयोजन उसे कहीं नहीं। आहाहा !

और जिसे सोलहवान शुद्ध सोने की प्राप्ति नहीं हुई उसको वहाँ तक पन्द्रहवान तक का प्रयोजनवान है। प्रयोजनवान है अर्थात कि इतना है वह जानना चाहिए। उसे यथार्थ जानना चाहिए कि यह तेरहवान है कि चौदहवान है कि पन्द्रहवान है - ऐसा जानना चाहिए, प्रयोजनवान है। उसे सोलहवान मान लें तब भूल है और पन्द्रहवान है उसे न मानें तो भूल है। आहाहा ! यह तो दृष्टांत हुआ।

`इसीप्रकार यह जीवनामक पदार्थ (है)' भगवानआत्मा अंदर... आहाहा ! जीव नामका पदार्थ। जीव यह पद है शब्द, जी...व दो अक्षर हो तब पद (बनता) और अर्थ यह जीव वस्तु है। जैसे शक्कर शब्द है यह पद है और शक्कर वस्तु है अर्थात इसका अर्थ अर्थात पदार्थ है। इसीप्रकार जीव शब्द है यह पद है, और जो वस्तु है (वह) अर्थ, यह अर्थ यह वस्तु है, यह पदार्थ है। जीवनामक पदार्थ है, वह... पुद्गल के संयोग से, पुद्गल का निमित्तरूप संयोग होने से, अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है। यह अशुद्धरूप अपने कारण, परंतु उसे पुद्गल का निमित्तरूप संयोग है। इस निमित्त के संबंध में उसकी अशुद्धता जीव की पर्याय में हो रही है। है ? पुद्गल के संयोग से पुद्गल का निमित्तरूप संयोग होने से, अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है। है अशुद्धरूप अपने कारण परंतु इसे पुद्गल का निमित्तरूप संयोग है। यह निमित्त के संबंध से, उसकी अशुद्धता जीव की पर्याय में हो रही है। है ? पुद्गल के संयोग से, संयोग से कहा है, संयोग अर्थात दूसरी वस्तु है बस इतना। परंतु हुई है अशुद्धता अनेकरूप

हुई वह अपनी पर्याय में। आहाहाहा ! समझ में आया ?

`जीव नामक पदार्थ है वह पुद्गल के संयोग से संबंध से अशुद्ध अनेकरूप हो रहा है' यह संबंध स्वयं किया है, इसलिए अशुद्ध हुआ है। आहाहा ! समझ में आया ? उसका सभी परद्रव्यों से भिन्न, उसे सर्व परद्रव्यों से भिन्न, `एक ज्ञायकपने मात्र का ज्ञान'... आहाहा ! सर्व परद्रव्यों के संबंध से भिन्न एक ज्ञायकपना जाननेवाला सर्वज्ञ स्वभावी भगवान पूर्ण, स्वभाव की बात है हो। त्रिकाल ! ज्ञायक ! एकरूप त्रिकाल सर्वज्ञ स्वभाव, एकरूप त्रिकाल। - ऐसा ज्ञायकभाव मात्र, ज्ञायकभाव मात्र, अकेला ध्रुवपना, ज्ञायकरूप, सर्वज्ञ स्वभावरूप, सामान्यरूप, ध्रुवरूप, एकरूप, सादृश्यरूप मात्र `ज्ञान श्रद्धान और आचरण प्राप्ति' उसका जिसे ज्ञान श्रद्धान और आचरणरूप प्राप्ति पर्याय में, यह तीनों जिसे हो गये उसे तो पुद्गलसंयोगजनित अनेकरूपता को कहनेवाला अशुद्धनय कुछ भी प्रयोजनवान (नहीं है) अर्थात उसे अशुद्धनय है नहीं। है नहीं अर्थात जानना प्रयोजनवान रहा नहीं। सोलहवान हुआ उसे पन्द्रहवान रहा नहीं अर्थात् प्रयोजन रहा नहीं। इसप्रकार सोलहवान केवलज्ञान हो गया उसे फिर संयोगजनित पर्याय है नहीं, इसलिए उसे प्रयोजन उसका रहा नहीं। समझ में आया ? गंभीर बातें बापू ! एक-एक बात... ऐसी बात है भाई ! लोगों ने धर्म को साधारण कर डाला परंतु धर्म बापू कोई अलौकिक चीज है। आहााह !

क्या कहा ? सर्व परद्रव्यों से भिन्न, संयोग के संबंधों से भिन्न, एक ज्ञायकरूप मात्र का, अकेला भगवान जाननेवाला शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु उसका जिसे ज्ञान हुआ, आहाहाहा ! उसका जिसे सम्यग्दर्शन हुआ श्रद्धा प्रतीति हुई और उसमें स्थिरतारूप आचरणप्राप्ति हुई। आहाहा ! ज्ञायकरूप मात्र का ज्ञान, ज्ञायकरूप मात्र का ज्ञान, क्या कहा ? ज्ञायकरूप त्रिकाली का ज्ञान, त्रिकाली की श्रद्धा और त्रिकाल में आचरण ठहरना... क्या कहा ? सर्व परद्रव्यों से भिन्न, एक ज्ञायकरूप, त्रिकाली ज्ञायक एकरूप स्वभाव, उसकी श्रद्धा, ज्ञान और आचरण... ऐसे ज्ञायकभाव के पूरणपने का ज्ञान, प्रतीति और आचरण... आहाहा ! प्राप्ति, `यह तीनों जिसे हो गये, उसको तो पुद्गल संयोगजनित अनेकरूपभाव को कहनेवाला अशुद्धनय कुछ प्रयोजनवान नहीं।' उसे अशुद्धनय है ही नहीं, प्रयोजनवान नहीं अर्थात कि इसे है ही नहीं, और नीचे है अतः जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा ! समझ में आया ? ऐसी सूक्ष्म सूक्ष्म बातें और फुरसत मिले नहीं, अवकाश मिले नहीं आदमी को। (श्रोता :- कब विचारे) चिमनभाई ! इस लोहे के सामने इसमें क्या इसमें ? आहाहा ! स्टील का बड़ा कारखाना अब वहाँ रुके कि इस (ज्ञायक) कारखाने में रुकें ? आहाहाहा ! थोड़ा भी पर का हो सकता नहीं, पुण्य और पाप का भाव करे - असंख्य प्रकार का शुभ और असंख्य प्रकार

का अशुभभाव करे अज्ञानी, परंतु पर को तो यह एक अंगुली पलट सके (नहीं)। यह प्रश्न ही कहाँ है ? इसने अनंत काल में सभी किया, अर्थात क्या ? शुभ और अशुभभाव, पर का तो किंचितमात्र एक परमाणु को पलट सके (नहीं) यहाँ है न यहाँ, तीनकाल में कर सकता नहीं। आहाहा ! (श्रोता :- रोज हमें करना और कर सकता नहीं, आप कहते है हमे करते क्या, इसका उपाय क्या ?)

यह कर सकता नहीं, यह कौन है और इसके भाव क्या होते है यह इसे पहले निश्चित करना चाहिए। कर सकता नहीं फिर भी भाव होता है यह क्षणिक है कि उपाधि है कि मैल है - ऐसा इसे जानना चाहिए और इस बिना की त्रिकाली चीज जो है... यह तो क्षणिक उत्पन्न होती है, यह कर सकता है अज्ञानभाव में, शुभ और अशुभभाव अज्ञानभाव से कर सकता है। पर का तो अज्ञानभाव से भी कर सकता नहीं। आहाहाहा !

यह वकील जवाब बोले न ! इस कायदे का यह है और यह भाषा आत्मा कर सकता नहीं तीनकाल में, जयसुखभाई ! (श्रोता :- उस दिन अैसा नहीं जाना ? उस दिन कहाँ खबर थी, उस दिन तो होशियारी में अंदर... आहाहाहा ! पर के एक रजकण को भी आत्मा एक प्रदेश से इसप्रकार दूसरे प्रदेश हटाने की क्रिया कर सकता नहीं। (श्रोता :- इसमें तो दो मत है। एक परमाणु का न कर सके ?) यह तो सभी अज्ञानी कहते हैं यह तो बात हो गई है। वहाँ रामविजय के गुरु थे उनके साथ चर्चा हुई थी। सुमनभाई को... इनका लड़का और जज अपने कनुभाई अहमदाबाद में जज है न ? यहाँ के हीराभाई के लड़के। उस मकान में हम थे सवातीन वर्ष... जज है कनुभाई ! यह दोनों जब गये, यह कहते कि आत्मा पर का कुछ कर सके नहीं। परमाणुं का नहीं कर सके, शरीर का कर सके। आहाहा ! ऐसे न ऐसे। क्या हो भाई !

अर्थात क्या करना ? परद्रव्य का करना अर्थात परद्रव्य अपनी पर्याय बिना का है ? कि उसका करना हो ! जिससमय तुम कहते हो कि इसका करना, तब यह द्रव्य क्या कार्य बिना का है ? कि उसका तुम करो ! लोजिकन्याय से पकड़ना पड़ेगा कि नहीं इसे। (श्रोता :- यह तो अपना काम करे और अपने भाई का भी करे) धूल में करे नहीं, अभिमान करे। आहाहा ! लोगों में - ऐसा कहते हैं कि एक गाय का चरवाहा इसीप्रकार पाँच गाय का चरवाहा, एक गाय को बाहर चरने ले जाये (जंगल में) साथ में पाँच को ले जाये तो क्या तकलीफ ? इसीप्रकार एक के घर का करे और दूसरे घर का करे ! परंतु यहाँ तो कहते हैं कि एक का भी कर सकते ही नहीं। आहाहा !

ऐसी बातें है... अज्ञानदशा में करे तो यह पुण्य-पापभाव को करे। शुभ-अशुभ भाव करे। यहाँ कहते हैं कि जिसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र पूर्ण प्राप्त हुआ उसे अशुद्धि होती नहीं। यह विकार भाव ही होता नहीं अर्थात इसे अशुद्धनय की कुछ जरुरत नहीं अर्थात है ही नहीं अशुद्धि। यहाँ इसका अर्थ यह है कि जिसे अशुद्धनय नहीं, उसे जानना कहाँ रहा, परंतु जिसे अभी राग का अंश है, और शुद्धता भी अंशिक प्रगटी है, उसे जानना रहता है कि मैं अभी अपूर्ण हूँ। हमारी दशा पूर्ण है नहीं - ऐसा उसने जाना हुआ, (इसप्रकार) जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहाहा !

अनेकरूपता का कहनेवाला अशुद्धनय कुछ प्रयोजनवान नहीं, परंतु जहाँ तक शुद्धभाव की प्राप्ति नहीं हुई, वहाँ तक जितना अशुद्धनय का कथन है अर्थात कि पर्याय की पूर्णता नहीं, और रागादिक का भाव है, उतना यथापदवी प्रयोजनवान (है), जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा ! - ऐसा है (कि) जाना हुआ प्रयोजनवान है। कहा न ? कि पूर्ण शुद्ध हुआ उसे अब अशुद्धनय नहीं अतः उसे अशुद्धनय प्रयोजनवान नहीं। अर्थात अशुद्धनय को जानना उसे है नहीं, और इसको तो अभी अशुद्धि है, शुद्धपर्याय है और अशुद्धराग है, दोनों साथ हैं, इसलिये उसे उस समय उतना उस प्रकार है - ऐसा उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है।

पूर्ण होने के बाद अशुद्धप्रयोजन नहीं इसका अर्थ क्या हुआ ? कि उसे अशुद्धि नहीं। नहीं इसलिए प्रयोजनवान नहीं। इसे अशुद्धता है और जाना हुआ प्रयोजनवान है। अशुद्धता है मेरे में और शुद्धता की पूर्णता नहीं - ऐसा इसे बराबर यथार्थरूप जानना चाहिए। जो इसप्रकार न जाने तो तीर्थ का नाश हो जाये। अर्थात मोक्षमार्ग की पर्याय के साथ निमित्त है उसका भी अभाव हो जाये। आहाहाहा ! समझ में आया ?

इसलिए - ऐसा नहीं कि व्यवहार... जो निर्मलपर्याय आई, वह तो यथार्थ व्यवहार है, परंतु साथ में राग है इसलिये थोड़ी अशुद्धता है और शुद्धता (है) अतः दोनों को जानना, वह उसे प्रयोजनवान है। इसे है अतः जानना प्रयोजनवान (है)। पूरण (दशावालों) को नहीं अतः उसे जानना प्रयोजनवान नहीं उसे अशुद्धता पर्याय में नहीं। यहाँ तो है अतः जानना प्रयोजनवान है - ऐसा कहा। आहाहा ! समझ में आया ?

अब एक-एक गाथा में इतनी गंभीरता भरी है। अब घर (पर) पढ़कर बैठ जाये पूरा समयसार। एक व्यक्ति कहता था कि तुम प्रवचनों में समयसार की बहुत प्रशंसा करते हो, ओहोहोहो ! पन्द्रहदिन में पढ़ लिया कहता था... आहाहा ! (श्रोता :- पढ़ गया न परंतु... समझा कुछ ?) इसमें बापू पन्द्रह दिन में रट के, पहाड़ा रट जाते है न समझे बिना अक्षर पढ़ गया इससे भी क्या हुआ ? परंतु उसमें भाव किस

अपेक्षा से कहा है वह समझे बिना पढ़ा क्या ? `**बांचे पर नहीं करे विचार, वह समझे नहीं पूरा सार**' यह हम पढ़ते थे दलपतराम में उन दिनों सत्तर वर्ष पहले, कवि थे कवि परीक्षा लेनेवाले। वांचे पर नहीं विचार, वह समझे नहीं पूरा सार। पढ़ता रहे परंतु समझे नहीं कि यह क्या है आहाहा !

जब तक शुद्धभाव की प्राप्ति हुई नहीं तब तक, अशुद्धनय का विषय है - ऐसा कहना है। उसका विषय है। (पूर्ण) शुद्धवालों को - ऐसा विषय ही नहीं अर्थात अशुद्धनय प्रयोजनवान नहीं। परंतु यहाँ अभी यह विषय है। अतः उसे जाना हुआ प्रयोजनवान है। मूल में तो - ऐसा इसका अर्थ है। आहाहा !

उतना यथापदवी प्रयोजनवान है `जहाँ तक यथार्थ ज्ञान श्रद्धान की प्राप्तिरूप' अब तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई उसकी बात करते हैं। वह तो पूर्ण प्राप्ति हुई नहीं, और अपूर्णरूप शुद्धपर्याय पूर्ण हुई नहीं एवं राग है, अर्थात है उसे जानना बराबर है। पूर्ण को तो है नहीं, है नहीं अतः जानना प्रयोजन कहाँ रहा ? यहाँ तो है, वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। कारण कि है उसे जानना है। आहाहा ! समझ में कुछ आया ?

जब तक यथार्थ, अब यहाँ नीचे का लिया, यह यहाँ गाथा में यह कुछ नहीं परंतु इन्होंने (पं. जयचनद्रजीने) लिखा। गाथा में तो मात्र जिसे निश्चय की दृष्टि जिसे हुई है, उसे पर्याय में पूर्णता हो जाय तब उन्हें व्यवहार होता नहीं। परंतु अपूर्ण रहे तो उसे व्यवहार है - ऐसा उसे बराबर जानना चाहिए। क्योंकि शुद्धि की अपूर्णता है और अशुद्धता का अंश साथ में है तब उसे जैसा है तैसा उसे जानना चाहिए। बस, इतना सिद्ध करना है। कहो देवीलालजी ! आहाहा ! - ऐसा है भाई ! वादविवाद से अंत आये - ऐसा नहीं प्रभु ! क्या करें ? आहा...हा !

अब यहाँ इसे स्वयं जयचन्द्रजी पण्डित(जी) थोड़ा, सम्यग्दर्शन के पहले की बात की थोड़ी। गाथा में यह नहीं, गाथा में तो सम्यग्दर्शन हुआ है त्रिकाली का आश्रय लेकर के, उसे जो पर्याय में अशुद्धता और अपूर्णता है, उसे जानना चाहिए इतनी बात है। समझ में आया ? परंतु इसने प्राप्त की है परंतु पर्याय में पूर्णता नहीं और अपूर्ण शुद्ध और अशुद्धता है, वह है अतः जाने, वह है उसे जानना - ऐसा है उसे जानना, इसप्रकार यह प्रयोजनवान। उनको नहीं उन्हें जाना हुआ प्रयोजनवान नहीं - ऐसा कहा। इसका अर्थ। आहाहा !

अब एक घण्टे में कितनी बातें आये। अब इसमें धंधे के कारण कहाँ (फुरसत) डॉक्टर को इन्जेकशन और इसमें सारा दिन... आहाहा ! (श्रोता इन्जेकशन लगाये एवं आयुष्य न हो तो मर जाय ?) वह मर गये शिवलाल यहाँ के, एक शिवलाल

पटेल थे, वह तो बेचारा दुःखी होता था हाँ ! कुछ रोग नहीं था थोड़ा भी, यह वल्लभभाई पटेल कहलाते है न उनके कुटुम्बी। करमसद, करमसद है, आनंद के पास। यह विट्ठल पटेल करमसद के, वह भी करमसद के थे, हमने करमसद देखा है, दुकान का माल लेने जाते थे उन दिनों। बहुत वर्षों की बातें हैं। करमसद बीड़ी का बड़ा व्यापार बड़ा, सोंफ डालकर तम्बाखु अकेली नहीं, उसमें सोंफ डाल कर बीड़ी (बनाते) करमसद है। वहाँ के शिवलाल पटेल हमारे यहाँ थे। वह भोजन करके आये, अपने भोजनशाला में जीमते थे। खाकर आये वह भोजन को (खाया)... और पहले केले खाये कि नहीं ? (श्रोता :- सिकी हुई मूंगफली) सिकी मूंगफली, मूंगफली-मूंगफली सिकी खाई और यह (भोजन) खाय। यह खाकर जब आये, और अपने यहाँ दहलान थी, वहाँ बैठे थे। हम आहार करके घूमने निकले शाम को ऐसे घूमते-घूमते शिवा पटेल को (पूंछा) कैसे हो ? बैठे थे इसप्रकार नीचे खाकर आये, कुछ नहीं था। कैसे हो पटेल ? अंतक्रिया। पंरतु क्या है ? कहें अंतक्रिया। क्या है क्या हुआ ? नीचे बैठे थे, खाकर आये, श्वांस नाभी से खिसक गई श्वांस, यह नाभी से श्वांस खिसक गई। हमने कुछ किया नहीं, खाकर आया हूँ, पैदल आये। कुछ नहीं था, रोग नहीं था, बैठा और श्वास यहाँ से खिसक गया नाभि से। नीचे नहीं बैठती। अंतिम क्रिया हमारी... अरे मर गये ! फिर थोड़ा जिये सुबह तक कि शाम तक ? (श्रोता :- दो बजे तक) हाँ ? दोपहर तक फिर भाई गये, धरमचंद डॉक्टर के पास वह दुःखी हुआ और इन्जेकशन लगाया। बस, इन्जेकशन दिया (और) श्वास बैठ गई (श्रोता :- दुःखी ज्यादा हुए) देह छूट गया। यहाँ थी दहलान। आहाहा ! जिस स्थिति में जिस समय देह छूटने का समय है उसे कौन बदले ? आहाहा !

बैठे-बैठे श्वास - ऐसा हो गया। कहा न उसने मलकापुरवालो, युवान लड़का क्या नाम ? मलकापुरवाला, पढ़ा लिखा मोक्षमार्गप्रकाशक (याद) जिसे पूरा मोक्षमार्गप्रकाशक कंठस्थ था। पहले से रस है (श्रोता :- स्वरूपचन्द्र) स्वरूपचन्द्र ! बड़ा व्यापारी है कपड़े का। दश दशहजार रुपयों की (खरीद करते) कपड़े के बड़े व्यापारी है। परंतु तत्त्व का रस बहुत मोक्षमार्गप्रकाशक का। कुंआरा था तब से बहुत प्रश्न करता था, अब तो शादी हुई एवं मलकापुर में बड़ी दुकान है। यह कहता था `महराज मैं एक बार बैठा था मित्र साथ में था २५/२६ वर्ष का। मित्र को कुछ रोग नहीं था, दोनों बातें करते थे - ऐसा - ऐसा करते फूंक होकर देह लुड़क गई। कुछ रोग नहीं, कोई श्वास भी नहीं, बात करके-करते फू - ऐसा हो गया कहता, देह छूट गया, यह कहता था स्वरूपचन्द्र कहता था। बहुत होशियार व्यक्ति मलकापुर में। है कोई मलकापुर का ? नहीं' कपड़े का बड़ा व्यापारी है दश दश हजार का

(कपड़ा लाता) आहाहा !

यह तो देह की स्थिति बापू ! जिस समय छूटना इसमें उसका कुछ काम नहीं आये। मालूम नहीं चले यह छूटता... फट छूट जाये।

यहाँ कहते हैं कि अशुद्धता जहाँ तक है, जहाँतक है उसे जानना। पूर्ण शुद्धता में अशुद्धता नहीं, अतः उसे जानने का प्रयोजन नहीं कहा। है वहाँ तक जानना प्रयोजनवान कहा। आदरना - ऐसी बात नहीं।

विशेष कहेंगे...

- प्रमाण वचन गुरुदेव !